[2020] 4 उम. नि. प. 388

रविन्दर कौर ग्रेवाल और अन्य

बनाम

मंजित कौर और अन्य

[2014 की सिविल अपील सं. 7764]

31 जुलाई, 2020

न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17, सिविल प्रकिया संहिता, 1908 की धारा 100 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65] – अपील – कुटुम्ब बंदोबस्त का रजिस्ट्रीकरण नहीं होना – कुटुम्ब बंदोबस्त के आधार पर, उस कुटुम्ब के सभी सदस्यों द्वारा कार्य किया जाना – कालांतर में, कुटुम्ब सदस्यों में से कुछ सदस्यों द्वारा उस कुटुम्ब बंदोबस्त पर इस आधार पर आक्षेप करना कि उक्त कुटुम्ब बंदोबस्त का रजिस्ट्रीकरण नहीं होने के नाते यह उन पर बाध्यकारी नहीं है – अपील खारिज होना – यदि किसी हिन्दू कुटुम्ब द्वारा आपसी सहमति से कुटुम्ब के स्थावर संपत्ति के संबंध में कोई बंदोबस्त किया जाता है और कुटुम्ब के सभी सदस्य उसके आधार पर कार्य भी करते हैं तो कालांतर में इस आधार पर उस कुटुम्ब के किसी भी सदस्य को इस बात से मुकरने नहीं दिया जाएगा कि ऐसा बंदोबस्त का रजिस्ट्रीकरण नहीं हुआ है, इसलिए, यह उन पर लागू नहीं होता है अर्थात् उन सभी पर विबंधन का नियम लागू होगा ।

वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि इसमें के अपीलार्थियों – हरबंस सिंह – पुत्र निरंजन सिंह, निवासी – संगरूर, पंजाब के पूर्वाधिकारियों द्वारा अपने सगे भाइयों मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के विरुद्ध फाइल किया गया था, यह उद्घोषणा करने के लिए कि वह अनुसूची में निर्दिष्ट, मोहल्ला रोड पर स्थित खसरा सं. 935/1 और 935/2 में समाविष्ट 11 कैनाल और 17 मारला भूमि और अन्य संपत्तियों का अनन्य स्वामी है । उसने यह

प्रख्यान किया है कि सम्माननीय व्यक्तियों और कुटुम्ब सदस्यों के हस्तक्षेप से एक कुटुम्ब बंदोबस्त हुआ था जिसके अधीन वाद भूमि जिनमें उस पर निर्माणों (16 दुकानों और चौहद्दी दीवारों के साथ एक सर्विस स्टेशन और उसकी पत्नी - गुरचरण कौर की समाधि सम्मिलित है) के संबंध में, उसके स्वामित्व और कब्जे को स्वीकार किया गया था और अभिस्वीकृत किया गया था । वाद भूमि के स्वामी की हैसियत में अवसंरचनाएं निर्मित की गई थीं । यह कथन किया गया है कि वर्ष 1970 में, वाद भूमि क्रय करने के पश्चात्, वाद भूमि के बारे में भाइयों के बीच कुछ विवाद उद्भूत हुआ था और उसके बाद कुटुम्ब बंदोबस्त हुआ जिसमें यह स्पष्टत: समझौता हुआ था कि वादी - हरबंस सिंह, वाद संपत्ति जिनमें उन पर हुए निर्माण भी सम्मिलित हैं, का स्वामी होगा और यह कि क्रमश: मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) तथा सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के नाम आधे हिस्से की सीमा तक स्वामियों के रूप में राजस्व अभिलेख में निरंतर बने रहेंगे और वादी को पक्षकारों के बीच नजदीकी संबंधों के कारण उस बारे में कोई आक्षेप नहीं होगा । तथापि, प्रतिवादियों ने उस आधे हिस्से का दावा करते हुए, विवाद उद्भूत किया जिसके संबंध में हरबंस सिंह (वादी) को अनन्य स्वामी होना स्वीकार किया गया था और अभिस्वीकृति प्रदान की गई थी और जिसके परिणामस्वरूप, उपर्युक्त निर्दिष्ट रूप से पक्षकारों के बीच पहले ही किए जा चुके बंदोबस्त के निबंधनों को निगमित करते हुए, कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन तैयार करने का विनिश्चय किया गया । कथित ज्ञापन को सभी पक्षकारों द्वारा तारीख 10 मार्च, 1988 को निष्पादित किया गया था । तथापि, तारीख 10 मार्च, 1988 के कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन का निष्पादन करने के पश्चात्, प्रतिवादियों ने कुटुम्ब बंदोबस्त से उद्भूत होने वाले नए विवाद्यकों को उद्भूत किया । परिणामस्वरूप, हरबंस सिंह (वादी) ने तारीख 9 मई, 1988 को घोषणा के लिए वाद फाइल करने का विनिश्चय किया, ऐसी डिक्री की प्रार्थना करते हुए कि वह मोहल्ला सड़क पर स्थित खसरा सं. 935/1 और 935/2 में समाविष्ट 11 कनाल 17 मारला भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । एक वैकल्पिक अभिवाक् यह भी लिया था कि चूंकि वादी संपूर्ण वाद संपत्ति का खुले तौर पर और प्रतिकूल तौर पर 20 वर्षों से अधिक समय से प्रतिवादियों की जानकारी

में कब्जे में है, इसलिए, उसने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व अधिकारों को अर्जित कर लिया है । प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया गया था । हरबंस सिंह (वादी) ने प्रत्युत्तर फाइल किया था । परस्पर विरोधी अभिवचनों के आधार पर, सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), संगरूर ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी का वाद भागत: सफल होता है और भागत: असफल होता है, इसलिए, उसके वाद को भागत: इस सीमा तक डिक्री किया जाता है कि वह खसरा सं. 935/1/1/2(5-18) का और खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) में उस पर निर्माण सहित ½ हिस्से की सीमा तक कब्जे सहित स्वामी होना अभिनिर्धारित किया जाता है । पक्षकारों के बीच नातेदारी और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । तद्नुसार, डिक्री प्रपत्र तैयार किया जाए । फाइल को अभिलेखागार में समनुदेशित किया जाए । इस विनिश्चय से व्यथित होकर, अपीलार्थियों/वादियों ने जिला न्यायाधीश, संगरूर के समक्ष तारीख 5 फरवरी, 2000 की सिविल अपील सं. 45, 11 जून, 2001 की बी.टी. सं. 60 के अधीन प्रथम अपील फाइल की । प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील मंजूर कर लिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उपांतरित कर दिया । प्रथम अपील न्यायालय ने मूल वादी को वाद भूमि के साथ उस पर निर्मित 16 दुकानों, एक सर्विस स्टेशन और भूमि में समाधि की चाहरदीवारी सहित वाद भूमि के स्वामी के रूप में घोषित किया । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 29 नवम्बर, 2003 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश में, अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय उपांतरित किया जाता है और वादी का वाद डिक्री की जाती है । वादी को मेहलान सड़क, संगरूर पर स्थित आयताकार में समाविष्ट 11 कनाल और 17 मारला भूमि तथा किला सं. 935/1/1/1(5-19), 935/1/1/2(5-18) भूमियों के साथ उन पर निर्मित 16 दुकानों, 1 सर्विस स्टेशन और भूमियों पर निर्मित समाधि के साथ चाहरदीवारी का स्वामी घोषित किया जाता है । मामले की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन

करेंगे । डिक्री प्रपत्र तैयार किया जाए और निर्णय की प्रति विद्वान् विचारण न्यायालय के फाइल पर रखी जाए और उसे तत्काल उत्तराधिकारी न्यायालय श्रीमती हरित कौर, पी.सी.एस., तत्कालीन सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), संगरूर को वापस किया जाए । यह न्यायालय इसे अभिलेखागार में प्रेषित करेगा । प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 ने मोहन सिंह, मूल प्रतिवादी सं. 1 का विधिक प्रतिनिधि होने के नाते उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की नियमित द्वितीय अपील सं. 946 के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उपर्युक्त पैरा 1 में प्रस्तुत विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर उक्त प्रत्यर्थियों के पक्ष में दिया । उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अपास्त कर दिया और यह राय व्यक्त की कि दस्तावेज जो स्थावर संपत्ति में वादी के पक्ष में प्रथम बार अधिकार सृजित करता है जिसमें उसका कोई पूर्व-विद्यमान अधिकार नहीं है, विधि का समादेश होने के नाते रजिस्ट्रीकृत कराना अपेक्षित था । तद्नुसार, द्वितीय अपील मंजूर कर लिया गया और निचले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अपास्त कर दिया गया, तदद्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 के आक्षेपित निर्णय को पुन: स्थापित कर दिया गया । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत की सत्यता को प्रश्नगत किया और विशिष्टतया, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को उलटने को प्रश्नगत किया । जब वर्तमान अपील की सुनवाई की जा रही थी तो न्यायालय ने मामले को तीन जजों के बृहत्तर न्यायपीठ को इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निर्दिष्ट किया कि क्या वादी का प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित करना, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65 के अधीन कहा जा सकता है और यदि मामले में पूर्वोक्त आधार पर वाद करना परिसीमा अधिनियम, 1963 के अधीन वर्जित है तो क्या इससे वादी के किन्हीं अधिकारों का अतिलंघन हुआ है । तद्नुसार, तीन न्यायाधीशों के खंडपीठ के समक्ष अपील में कार्यवाही आरंभ हुई जिसमें उक्त प्रश्न का उत्तर तारीख 7 अगस्त, 2009 के निर्णय द्वारा वादी के पक्ष में दिया गया । परिणामत:, अपील में मामले पर स्वयं इसके गुणागुणों पर विचार करने के लिए हमारे समक्ष लाया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय

द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित- इस अपील में अंतर्वलित मूल विवाद्यक यह है कि क्या दस्तावेज प्रदर्श पी-6 को रजिस्ट्रीकृत करना अपेक्षित था क्योंकि इसमें वादी के पक्ष में रु. 100/- से अधिक मूल्य के स्थावर संपत्ति में हित अंतरित हुआ है । यह विवादित नहीं है कि पक्षकार नजदीकी नातेदार हैं । मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2), हरबंस सिंह (मूल वादी) के सगे भाई थे । मूल प्रतिवादी सं. 4 - हरजिन्दर कौर, सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) की पत्नी है । वादी और प्रतिवादी सं. 1 और 2 के पिता की मृत्यु प्रतिवादी सं. 1 और 2 के अवयस्क रहने के दौरान हो गई थी । प्रतिवादियों ने तारीख 16 अप्रैल, 1970 के विक्रय विलेख (प्रदर्श डी.डब्ल्यू. 3/ए) की प्रतिलिपि को साबित किया है जिसके द्वारा मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) ने खसरा सं. 935/1 में समाविष्ट 5 कनाल 19 मारला भूमि का क्रय किया था । हरबंस सिंह (वादी) विक्रय विलेख के निष्पादन के समय पर क्रेता की ओर से उपस्थित हुआ था । विवादित संपत्ति (प्रदर्श डी-1) का वर्ष 1984-1985 के लिए जमाबंदी से यह प्रकट होता है कि खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) में मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के नाम स्वामियों के रूप में दर्शित है जबकि हरबंस सिंह (वादी) का नाम स्वामी के रूप में खसरा सं. 935/1/1/2(5-18) में दर्शित है । मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) ने यह कथन किया है कि हरबंस सिंह के नाम में दर्शित भूमि को उसके द्वारा संयुक्त कुटुम्ब की निधि से क्रय किया गया है, किन्तु उस तथ्य को लड़ने वाले प्रतिवादियों द्वारा साबित या सिद्ध नहीं किया गया है । उस अभिप्राय में, राजस्व अभिलेखों से प्रतीत होता है कि संबंधित पक्षकार, पृथक् संपत्तियों के संबंध में स्वामी थे न कि संयुक्त स्वामियों के रूप में । यह तथ्य शेष रह जाता है कि हरबंस सिंह (मूल वादी), मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) सगे भाई होने के नाते नजदीकी नातेदार थे । आगे, यद्यपि, जमाबंदी में अभिलिखित वाद संपत्ति के स्वामित्व से संबंधित प्रतिवादी, हरबंस सिंह (वादी) ने संपत्ति पर 16 दुकानों, अपनी पत्नी-गुरचरण कौर की समाधि

और चाहरदीवारी का निर्माण किया था और जिन पर उसका कब्जा था । संगत तौर पर, विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 24 में यह राय दी थी सभी तीनों भाई - हरबंस सिंह (वादी), मोहन सिंह (प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) जैसा कि प्रदर्श पी-6 में उल्लिखित है, कतिपय संपत्तियों को धारित करते थे जिन पर बड़ा होने के नाते हरबंस सिंह (वादी) का कब्जा था । तथापि, यह अनुज्ञेय कब्जा था । प्रथम अपील न्यायालय ने भी निर्णय के पैरा 16 में यह राय दी है कि हरबंस सिंह (वादी) प्रतिवादियों की सहमति से वाद संपत्ति के कब्जे में आया था । विशेष रूप से, तथ्य के इस निष्कर्ष में उच्च न्यायालय द्वारा कोई छेड़-छाड़ नहीं की गई है । इसके अलावा, अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि प्रेम बस्ती का भूखंड हरबंस सिंह (वादी) से संबंधित है जिसे उसने मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) से उसका कब्जा लेने के पश्चात् सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) को दिया था । आगे, हरबंस सिंह (वादी) ने अपने पुत्र के नाम में क्रय भूखंड को मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और अपनी पत्नी को दिया था । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा स्वीकार किया गया है कि बाद में उक्त भूखंड को सुरजीत कौर को विक्रय कर दिया गया था । इन तथ्यों से स्पष्टत: यह सिद्ध होता है कि पक्षकारों के बीच न केवल एकार्थक कुटुम्ब व्यवस्थापन हुआ था अपितु उस पर, किसी अपवाद के बिना उनके द्वारा कार्य भी किया गया था । इस तथ्यात्मक स्थिति पर, उच्च न्यायालय द्वारा संदेह नहीं किया गया है । यथार्थत:, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष की सत्यता का विश्लेषण करते समय इस पहलू का उल्लेख भी नहीं किया है जो न्यायालय का अंतिम तथ्य निष्कर्ष था । आक्षेपित निर्णय से, यह उल्लिखित है कि आधारभूत तथ्यों को देने के पश्चात्, उच्च न्यायालय ने सर्वप्रथम विचारण न्यायालय के निर्णय के सुसंगत भाग को उद्धृत (उसके पैरा 17 से 21) किया है और उसके पश्चात् अन्य विवाद्यकों पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को उल्लिखित किया है । उसके बाद उच्च न्यायालय ने इसकी संपूर्णता में, प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के पैरा 16 को उद्धृत किया, लगभग 8 पृष्ठों को पढ़ने के पश्चात् और उसके बाद विधि के सारवान् प्रश्न को विरचित किया । उच्च न्यायालय

के निर्णय से साधारणत: यह स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा उल्लिखित तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार नहीं किया है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 मात्र कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है और न कि कुटुम्ब बंदोबस्त के निबंधनों और वर्णनों को अंतर्विष्ट करने वाले दस्तावेज हैं जिसके कारण, वादी द्वारा दावाकृत अनुतोष वर्ष 1970 में किए गए सगे भाइयों के बीच कुटुम्ब व्यवस्थापन पर आधारित है, जिस पर बिना किसी अपवाद के कार्य किया गया है और जिसे तारीख 10 मार्च, 1988 को दस्तावेज का रूप दिया गया, का अनुसरण किया जाना चाहिए । प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायोचित तौर पर यह भी राय दी है कि पक्षकारों ने कथित कुटुम्ब बंदोबस्त के आधार पर कार्य किया है और यदि न्यायालय ऐसा कह सकता है तो वह अन्य पक्षकार के प्रतिकूल होगा । प्रेम बस्ती में स्थित संपत्ति वादी के नाम में थी जिसे सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) को दिया गया था जो अन्यथा मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) के कब्जे में थी । आगे, वादी द्वारा अपने पुत्र के नाम में क्रय की गई भूखंड को मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और उसकी पत्नी को दिया गया था किन्तु वह भूखंड, स्वीकृतत:, उनके द्वारा सुरजीत कौर को विक्रय कर दिया गया था । सगे भाइयों के बीच कुटुम्ब बंदोबस्त और उनके द्वारा उस पर कार्य किए जाने के कारण, यह उनके द्वारा इसका विरोध करने के लिए खुला नहीं है । वे इसके प्रतिकूल दलील देने से विबंधित हैं । इस दुरुह पहलू पर उच्च न्यायालय द्वारा सही व्याख्या नहीं की गई है और यदि न्यायालय ऐसा कह सकता है तो द्वितीय अपील साधारण तरीके से निपटाई गई हैं । चूंकि, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में, मात्र विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के उद्धरण अंतर्विष्ट हैं और उन निर्णयों (पूर्व-निर्णयों) का अवलंब लिया गया है । मात्र दो निष्कर्ष वाले पैराग्राफों पर विचार किया गया है जो उपर्युक्त उद्धृत हैं (पैरा 12) । यद्यपि, उसका उदार परिशीलन करने पर, यह निष्कर्ष निकालना संभाव्य नहीं है कि उच्च न्यायालय ने अपनी अपीली अधिकारिता (द्वितीय अपील) का प्रयोग करते हुए, सही परिप्रेक्ष्य में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय का समुचित विश्लेषण और संवीक्षा की है, कम से कम, सिविल प्रक्रिया

संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ग्रहण करने की सीमित अधिकारिता को ध्यान में रखते हुए । आक्षेपित निर्णय में, उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के सुविचारित विनिश्चय को उलटने में लापरवाह दृष्टिकोण अपनाया गया है । यद्यपि, आक्षेपित निर्णय में 36 पृष्ठ हैं, फिर भी जिस तरीके से इसमें कार्यवाही की गई है उससे हमारे लिए यह राय व्यक्त करना समुचित होगा कि यह रहस्मय निर्णय है । न्यायालय इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता है । एकमात्र इस आधार पर ही आक्षेपित निर्णय, न्यायिक संवीक्षा के परीक्षण में खरा नहीं उतरता है । चाहे जैसी भी स्थिति हो, उच्च न्यायालय ने अवलंब लिए गए विनिश्चयों में सुस्थिर सिद्धांत को स्पष्टत: गलत तौर पर लागू किया है । सुस्थिर विधिक प्रास्थिति यह है कि जब कुटुम्ब बंदोबस्त या व्यवस्थापन को ध्यान में रखते हुए, एक ही पूर्वज या नजदीकी नातेदार से कुटुम्ब वंशज के सदस्य अपने विभेदों और विवाद्यकों का निपटारा करने के लिए विरोधाभासी दावों और हक संबंधी विवादों और विवेक में शांति को ध्यान में रखते हुए और लगभग संपूर्ण सौहार्द और कुटुम्ब की भलाई के लिए कोई बंदोबस्त और व्यवस्थापन करते हैं तो ऐसे करार को उनके बीच विशेष साम्या द्वारा शासित होना चाहिए और उन्हें ईमानदारी से प्रवर्तित करना चाहिए । ऐसे व्यवस्थापन का उद्देश्य लंबे मुकदमेबाजी या शाश्वत संघर्ष से कुटुम्ब की संरक्षा करना है जिससे कुटुम्ब की एकता और मजबूती के बिगड़ने का भय समाप्त हो जाता है और कुटुम्ब के कतिपय सदस्यों के बीच घृणा और नफरत को समाप्त करता है । न्यायालय को प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष की पुष्टि करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 कुछ नहीं है अपितु, एक कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है । सिद्ध तथ्यों और परिस्थितियों से स्पष्टत: यह सिद्ध होता है कि कुटुम्ब बंदोबस्त वर्ष 1970 में किया गया था और संबंधित पक्षकारों द्वारा उस पर कार्य भी किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य का निष्कर्ष, संतोषजनक होने के नाते, इस बात के लिए अनुसरण किया जाना चाहिए कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 मात्र एक कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है, जैसा कि निष्कर्ष निकाला गया है । परिणामत:, इसे रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं था और किसी भी दशा में,

सुस्थिर विधिक प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए, लड़ने वाले प्रतिवादी, ज्ञापन के अध्यधीन कथित व्यवस्थापन से इनकार करने से विबंधित हैं जिसे पहले ही निकाले गए निष्कर्ष में बंदोबस्त के निबंधनों में अभिलिखित किया गया था और संबंधित संपत्ति में पूर्ववर्ती हक के अभाव के बावजूद कुटुम्ब सदस्यों (ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले) के बीच विषयवस्तु की संपत्ति के बारे में सभी मौजूदा या भावी विवादों के संबंध में भी उसके आधार पर कार्य किया गया है । उपर्युक्त चर्चा करने के पश्चात्, न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय के सुविचारित विनिश्चय को उलटने में प्रकटत: और विशिष्टत: त्रुटि कारित की है, जिसमें न्यायोचित तौर पर यह निष्कर्ष निकाला गया था कि पक्षकारों के बीच निष्पादित तारीख 10 मार्च, 1988 का दस्तावेज मात्र बंदोबस्त का ज्ञापन था और इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित नहीं था । इस बात का भी अनुसरण किया जाना चाहिए कि वाद में वादी द्वारा दावाकृत अनुतोष जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया था, में भी उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था और इतना ही नहीं, इसे पूर्ववर्ती उल्लिखित तौर पर सरसरी तरीके से नहीं निपटाया जाना चाहिए था । उपर्युक्त कथनों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामी होने के आधार पर यथाप्रार्थित वादी को मंजूर डिक्री के वैकल्पिक अभिवाक् की परीक्षा करना अनावश्यक हो जाता है । अभिलेख के लिए, न्यायालय यह उल्लेख कर सकता है कि वस्तुत:, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि वादी का कब्जा, मात्र अनुज्ञेय कब्जा था और उस निष्कर्ष में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा कोई बाधा नहीं डाली गई है । ऐसे मामलों में यह संदेहपूर्ण हो जाता है कि वादी को उसके द्वारा प्रार्थित अनुतोष के बारे में सुना गया है, जैसा कि उसके द्वारा प्रतिकूल कब्जे का वैकल्पिक अभिवाक् किया गया है । चाहे जैसी भी स्थिति हो, न्यायालय आक्षेपित निर्णय को अपास्त करना और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा वादियों (इसमें के अपीलार्थियों) के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री को पुन: स्थापित करना समुचित समझता है । (पैरा 10, 11, 12, 14, 15, 16, 19, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 788 : **सोम देव और अन्य** बनाम **रति राम और एक अन्य** ;	17,18
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 658 : **हरिशंकर सिंघानिया और अन्य** बनाम **गौर हरि सिंघानिया और अन्य** ;	12
[2003]	पी. एल. आर. (2003) 135 पंजाब और हरियाणा 182 : **जगदीश और अन्य** बनाम **रामकरण और अन्य** ;	12
[1996]	(1996) 3 आर. सी. आर. (सि.) 740. (पैरा 7 से 9) : **हंसराज और अन्य** बनाम **मुख्तियार सिंह** ;	12
[1995]	(1995) 5 एस. सी. सी. 709 : **भूप सिंह** बनाम **राम सिंह मेजर और अन्य** ;	12,17,18
[1976]	(1976) 3 एस. सी. सी. 119 : **काले और अन्य** बनाम **उप-चकबंदी निदेशक और अन्य** ।	7,16,18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 7764.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री मनोज स्वरूप, ज्येष्ठ अधिवक्ता, ऋषि मल्होत्रा, उत्कर्ष सिंह, (सुश्री) नीलमणि पंत, मोहित चौधरी, प्रेम मल्होत्रा, प्रवीण कुमार अग्रवाल, सुरिन्दर सिंह पन्नू, अभिषेक ग्रोवर, परीक्षित विश्नोई, नागे नन्या, संजय जैन, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर ने दिया ।

न्या. खानविलकर – यह अपील, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2004 की नियमित द्वितीय अपील सं. आरएसए 946 में पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 (मोहन सिंह - मूल प्रतिवादी सं. 1 के उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधिगण) द्वारा फाइल द्वितीय अपील को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर देते हुए मंजूर कर लिया था :–

> "क्या दस्तावेज सं. पी-6, स्थावर संपत्ति में हित जिसका मूल्य रु. 100/- से अधिक है, उक्त दस्तावेज के माध्यम से रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था, वादी के पक्ष में स्थानांतरित हुआ था ?"

2. संक्षिप्ततः, यह कथित किया गया है कि वाद, इसमें के अपीलार्थियों - हरबंस सिंह – पुत्र निरंजन सिंह, निवासी – संगरूर, पंजाब के पूर्वाधिकारियों द्वारा अपने सगे भाइयों मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के विरुद्ध फाइल किया गया था, यह उद्घोषणा करने के लिए कि वह अनुसूची में निर्दिष्ट, मोहल्ला रोड पर स्थित खसरा सं. 935/1 और 935/2 में समाविष्ट 11 कनाल और 17 मालरा भूमि और अन्य संपत्तियों का अनन्य स्वामी है । उसने यह प्राख्यान किया है कि सम्माननीय व्यक्तियों और कुटुम्ब सदस्यों के हस्तक्षेप से एक कुटुम्ब बंदोबस्त हुआ था जिसके अधीन वाद भूमि जिनमें उस पर निर्माणों (16 दुकानों और चौहद्दी दीवारों के साथ एक सर्विस स्टेशन और उसकी पत्नी - गुरचरण कौर की समाधि सम्मिलित है) के संबंध में, उसके स्वामित्व और कब्जे को स्वीकार किया गया था और अभिस्वीकृत किया गया था । वाद भूमि के स्वामी की हैसियत में अवसंरचनाएं निर्मित की गई थीं । यह कथन किया गया है कि वर्ष 1970 में, वाद भूमि क्रय करने के पश्चात्, वाद भूमि के बारे में भाइयों के बीच कुछ विवाद उद्भूत हुआ था और उसके बाद कुटुम्ब बंदोबस्त हुआ जिसमें यह स्पष्टत: समझौता हुआ था कि वादी - हरबंस सिंह, वाद संपत्ति जिनमें उन पर हुए निर्माण भी सम्मिलित हैं, का स्वामी होगा और यह कि क्रमश: मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) तथा

सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के नाम आधे हिस्से की सीमा तक स्वामियों के रूप में राजस्व अभिलेख में निरंतर बने रहेंगे और वादी को पक्षकारों के बीच नजदीकी संबंधों के कारण उस बारे में कोई आक्षेप नहीं होगा । तथापि, प्रतिवादियों ने उस आधे हिस्से का दावा करते हुए, विवाद उद्भूत किया जिसके संबंध में हरबंस सिंह (वादी) को अनन्य स्वामी होना स्वीकार किया गया था और अभिस्वीकृति प्रदान की गई थी और जिसके परिणामस्वरूप, उपर्युक्त निर्दिष्ट रूप से पक्षकारों के बीच पहले ही किए जा चुके बंदोबस्त के निबंधनों को निगमित करते हुए, कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन तैयार करने का विनिश्चय किया गया । कथित ज्ञापन को सभी पक्षकारों द्वारा तारीख 10 मार्च, 1988 को निष्पादित किया गया था । तथापि, तारीख 10 मार्च, 1988 के कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन का निष्पादन करने के पश्चात्, प्रतिवादियों ने कुटुम्ब बंदोबस्त से उद्भूत होने वाले नए विवाद्यकों को उद्भूत किया । परिणामस्वरूप, हरबंस सिंह (वादी) ने तारीख 9 मई, 1988 को घोषणा के लिए वाद फाइल करने का विनिश्चय किया, ऐसी डिक्री की प्रार्थना करते हुए कि वह मोहल्ला सड़क पर स्थित खसरा सं. 935/1 और 935/2 में समाविष्ट 11 कनाल 17 मारला भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । एक वैकल्पिक अभिवाक् यह भी लिया था कि चूंकि वादी संपूर्ण वाद संपत्ति का खुले तौर पर और प्रतिकूल तौर पर 20 वर्षों से अधिक समय से प्रतिवादियों की जानकारी में कब्जे में है, इसलिए, उसने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व अधिकारों को अर्जित कर लिया है ।

3. प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया गया था । हरबंस सिंह (वादी) ने प्रत्युत्तर फाइल किया था । परस्पर विरोधी अभिवचनों के आधार पर, सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), संगरूर ने 1988 की वाद सं. 187, तारीख 18 जनवरी, 1985 की बी. टी. सं. 185 में निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया :–

> "1. क्या वादी, वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है ?
>
> 2. क्या तारीख 10 मार्च, 1988 को पक्षकारों के बीच कोई कुटुम्ब बंदोबस्त हुआ था और उसी दिन पक्षकारों द्वारा कोई कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन निष्पादित हुआ था ?

3. क्या वादी ने विवादित संपत्ति पर दुकानों, एक सर्विस स्टेशन और चारों तरफ चाहरदीवारी का निर्माण किया था ?

4. क्या वादी, प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद भूमि का स्वामी हो गया है ?

5. क्या विवादित संपत्ति को संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब सहदायी संपत्ति की आय से क्रय किया गया था और क्या वाद संपत्ति पर निर्माण भी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब सहदायी संपत्ति से किया गया था ?

6. क्या सोहन सिंह, मोहन सिंह और हरबंस सिंह मिलकर संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब गठित करते हैं ?

7. क्या प्रतिवादी अपने कृत्य और आचरण द्वारा कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन के निष्पादन से इनकार करने से विबंधित है ?

8. अनुतोष ।"

वाद लंबित रहने के दौरान, हरबंस सिंह (वादी) की मृत्यु हो गई और इसलिए, इसमें के अपीलार्थियों को उसके विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते अभिलेख पर लाया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 19 जनवरी, 2000 के निर्णय और डिक्री द्वारा वाद को भागत: निम्नलिखित निबंधनों के साथ डिक्री कर दिया था :-

"अनुतोष

30. उपर्युक्त कतिपय विवाद्यकों पर मेरे चर्चा को ध्यान में रखते हुए, वादी का वाद भागत: सफल होता है और भागत: असफल होता है, इसलिए, उसके वाद को भागत: इस सीमा तक डिक्री किया जाता है कि वह खसरा सं. 935/1/1/2(5-18) का और खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) में उस पर निर्माण सहित ½ हिस्से की सीमा तक कब्जे सहित स्वामी होना अभिनिर्धारित किया जाता है । पक्षकारों के बीच नातेदारी और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । तद्नुसार, डिक्री प्रपत्र तैयार किया जाए । फाइल को अभिलेखागार में समनुदेशित किया जाए ।"

4. इस विनिश्चय से व्यथित होकर, अपीलार्थियों/वादियों ने जिला न्यायाधीश, संगरूर के समक्ष तारीख 5 फरवरी, 2000 की सिविल अपील सं. 45, 11 जून, 2001 की बी. टी. सं. 60 के अधीन प्रथम अपील फाइल की । प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील मंजूर कर लिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उपांतरित कर दिया । प्रथम अपील न्यायालय ने मूल वादी को वाद भूमि के साथ उस पर निर्मित 16 दुकानों, एक सर्विस स्टेशन और भूमि में समाधि की चाहरदीवारी सहित वाद भूमि के स्वामी के रूप में घोषित किया । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित तारीख 29 नवम्बर, 2003 का प्रवर्तित आदेश निम्नलिखित है :-

> "18. उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश में, अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय उपांतरित किया जाता है और वादी का वाद डिक्री की जाती है । वादी को मेहलान सड़क, संगरूर पर स्थित आयताकार में समाविष्ट 11 कनाल और 17 मारला भूमि तथा किला सं. 935/1/1/1(5-19), 935/1/1/2(5-18) भूमियों के साथ उन पर निर्मित 16 दुकानों, 1 सर्विस स्टेशन और भूमियों पर निर्मित समाधि के साथ चाहरदीवारी का स्वामी घोषित किया जाता है । मामले की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे । डिक्री प्रपत्र तैयार किया जाए और निर्णय की प्रति विद्वान् विचारण न्यायालय के फाइल पर रखी जाए और उसे तत्काल उत्तराधिकारी न्यायालय श्रीमती हरित कौर, पी. सी. एस., तत्कालीन सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), संगरूर को वापस किया जाए । यह न्यायालय इसे अभिलेखागार में प्रेषित करेगा ।"

5. प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 ने मोहन सिंह, मूल प्रतिवादी सं. 1 का विधिक प्रतिनिधि होने के नाते उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की नियमित द्वितीय अपील सं. 946 के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उपर्युक्त पैरा 1 में प्रस्तुत विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर उक्त प्रत्यर्थियों के पक्ष में दिया । उच्च

न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अपास्त कर दिया और यह राय व्यक्त किया कि दस्तावेज जो स्थावर संपत्ति में वादी के पक्ष में प्रथम बार अधिकार सृजित करता है जिसमें उसका कोई पूर्व-विद्यमान अधिकार नहीं है, विधि का समादेश होने के नाते रजिस्ट्रीकृत कराना अपेक्षित था । तद्नुसार, द्वितीय अपील मंजूर कर ली गई और निचले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अपास्त कर दिया गया, तद्द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 के आक्षेपित निर्णय को पुन: स्थापित कर दिया गया ।

6. अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत की सत्यता को प्रश्नगत किया और विशिष्टतया, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को उलटने को प्रश्नगत किया । जब वर्तमान अपील की सुनवाई की जा रही थी तो न्यायालय ने मामले को तीन जजों के बृहत्तर न्यायपीठ को इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निर्दिष्ट किया कि क्या वादी का प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित करना, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65 के अधीन कहा जा सकता है और यदि मामले में पूर्वोक्त आधार पर वाद करना परिसीमा अधिनियम, 1963 के अधीन वर्जित है तो क्या इससे वादी के किन्हीं अधिकारों का अतिलंघन हुआ है । तद्नुसार, तीन न्यायाधीशों के खंडपीठ के समक्ष अपील में कार्यवाही आरंभ हुई जिसमें उक्त प्रश्न का उत्तर तारीख 7 अगस्त, 2009 के निर्णय द्वारा वादी के पक्ष में दिया गया । परिणामत:, अपील में मामले पर स्वयं इसके गुणागुणों पर विचार करने के लिए हमारे समक्ष लाया गया है ।

7. अपीलार्थियों ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील का निपटारा सरसरी तौर पर किया है और इतना ही नहीं उच्च न्यायालय ने वादी के पक्ष में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष पर विचार किए बिना अपील का निपटारा किया है । यह तर्क दिया कि प्रथम अपील न्यायालय ने स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति को नोटिस करने के पश्चात्, इस प्रश्न की प्रथम परीक्षा की थी कि क्या तारीख 10 मार्च, 1988 का दस्तावेज (प्रदर्श पी-6) पक्षकारों द्वारा निष्पादित किया गया था या नहीं । इस तथ्य का उत्तर, अभिलेख पर

साक्ष्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् वादी (अपीलार्थियों) के पक्ष में दिया गया था । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कथित दस्तावेज, अविवादित तौर पर पक्षकारों द्वारा निष्पादित हुआ था । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा विचारित अगला प्रश्न यह था कि क्या कथित दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था या नहीं, जिसका न्यायोचित तौर पर उत्तर वादी (अपीलार्थियों) के पक्ष में दिया गया है, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि यह मात्र कुटुम्ब बंदोबस्त का एक ज्ञापन था और उक्त दस्तावेज में निबंधन अंतर्विष्ट नहीं थे और उसके अधीन कुटुम्ब बंदोबस्त का वर्णन था । उसके लिए, प्रथम अपील न्यायालय ने यह उल्लिखित किया था कि वादी ने स्वयं ही वाद भूमि पर 16 दुकानों और चाहरदीवारी सहित एक समाधि का निर्माण किया था जो अविवादित है और अभिलेख पर के साक्ष्यों से सिद्ध होता है । आगे, वादी वाद भूमि के कब्जे में था । यह निष्कर्ष, अभिलेख पर के साक्ष्यों द्वारा समर्थित है और अच्छी तरह से सिद्ध है । अभिलेखों से यह भी सिद्ध है कि कुटुम्ब बंदोबस्त के अनुसार, प्रेम बस्ती में भूखंड हरबंस सिंह (वादी) से संबंधित है जिसे सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं 2) को दिया गया था जो मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) के कब्जे में था और यह कि वादी द्वारा क्रय एक अन्य भूखंड उसके पुत्र विक्रमजीत सिंह के नाम में था जिसे मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और उसकी पत्नी को दिया गया था । यह उल्लेख किए जाने योग्य है कि प्रतिवादी साक्षी सं. 1 (डी. डब्ल्यू. 1) ने यह स्वीकार किया है कि उक्त संपत्ति उसके पश्चात् सुरजीत कौर को विक्रय कर दी थी । सारतः, यह सिद्ध होता है कि पक्षकारों ने उस कुटुम्ब बंदोबस्त पर कार्य किया था जो कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन के अधीन दस्तावेज प्रदर्श पी-6 के प्ररूप में अभिलिखित हुआ था । दूसरे शब्दों में, संबंधित पक्षकारों ने वर्ष 1970 में विनिश्चित बंदोबस्त निबंधनों के अनुसार कुटुम्ब व्यवस्थापन पर कार्य किया था और दस्तावेज प्रदर्श पी-6 (कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन) द्वारा प्रबलित होता है । कुटुम्ब व्यवस्थापन का ज्ञापन होने के नाते इसे रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं था और किसी भी दशा में पक्षकारों का उक्त बंदोबस्त के निबंधनों पर कार्य करना अन्य पक्षकार के प्रतिकूल नहीं हो सकता है, इसलिए, उन्हें उक्त व्यवस्थापन का विरोध करना खुला नहीं है । इस प्रकार, वे पहले से ही

किए गए बंदोबस्त पर कार्य करने और इस प्रकार अभिलिखित कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन को अस्वीकार करने से विबंधित है । इस प्रकार, बंदोबस्त, अपीलार्थियों द्वारा स्वीकृत था और उन सभी कुटुम्ब सदस्यों को वाद संपत्ति का स्वामी होने के नाते जानकारी थी जो कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन (प्रदर्श पी-6) के पक्षकार भी थे । अपीलार्थियों ने **काले और अन्य** बनाम **उप-चकबंदी निदेशक और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया है जिसमें उन्होंने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को पुन:स्थापित करने और आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने की प्रार्थना की थी ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 में यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने दस्तावेज प्रदर्श पी-6 पर सही तौर पर विचार किया है क्योंकि उसमें कुटुम्ब बंदोबस्त के निबंधन और वर्णन अंतर्विष्ट हैं और जिसके कारण इसका रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक था । यह तर्क दिया है कि वाद संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में कोई पूर्व-विद्यमान हक नहीं था क्योंकि उसे रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से संबंधित प्रतिवादी के नाम में क्रय किया गया था । इस प्रकार, पक्षकार, संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब संपत्ति के कब्जे में नहीं थे और इसलिए, उस संपत्ति के विभाजन का प्रश्न नहीं उठता है । यह अभिवाक् कि कोई संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब संपत्ति नहीं थी, वादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल प्रत्युत्तर में लिया गया था । यह अभिवाक् प्रतिवादी द्वारा फाइल इस लिखित कथन में किए गए प्राख्यान के संदर्भ में लिया गया था कि वाद संपत्ति, संयुक्त रूप से मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) द्वारा धारित था । लड़ने वाले प्रत्यर्थियों ने इस आधार को पुन: दोहराया है कि वर्ष 1970 में कोई कुटुम्ब बंदोबस्त नहीं किया गया था जैसा कि वादी द्वारा कथित है और यह कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 पर उपस्थित प्रतिवादी सं. 2 के हस्ताक्षर कूटरचित और बनावटी हैं । आगे, उच्च न्यायालय ने न्यायोचित तौर पर वादी के वाद को खारिज किया है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित

---

[1] (1976) 3 एस. सी. सी. 119.

भागत: डिक्री को पुन: स्थापित किया है, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 साक्ष्य में अग्राह्य है, क्योंकि इसे रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है बावजूद इसके कि रु. 100/- से अधिक मूल्य की स्थावर संपत्ति में हक अंतरित किया गया है । दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय ने विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर वादी के विरुद्ध दिया है और जिसके परिणामस्वरूप, प्रतिवादियों (प्रतिवादी सं. 1 से 3) फाइल द्वितीय अपील को सही ही मंजूर किया गया है । उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार अपनाया गया मत संतोषजनक है ।

9. हमने, अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री मनोज स्वरूप और प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री प्रवीण कुमार अग्रवाल को सुना ।

10. इस अपील में अंतर्वलित मूल विवाद्यक यह है कि क्यादस्तावेज प्रदर्श पी-6 को रजिस्ट्रीकृत करना अपेक्षित था क्योंकि इसमें वादी के पक्ष में रु. 100/- से अधिक मूल्य के स्थावर संपत्ति में हित अंतरित हुआ है ।

11. यह विवादित नहीं है कि पक्षकार नजदीकी नातेदार हैं । मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2), हरबंस सिंह (मूल वादी) के सगे भाई थे । मूल प्रतिवादी सं. 4 – हरजिन्दर कौर, सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) की पत्नी है । वादी और प्रतिवादी सं. 1 और 2 के पिता की मृत्यु प्रतिवादी सं. 1 और 2 के अवयस्क रहने के दौरान हो गई थी । प्रतिवादियों ने तारीख 16 अप्रैल, 1970 के विक्रय विलेख (प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए) की प्रतिलिपि को साबित किया है जिसके द्वारा मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) ने खसरा सं. 935/1 में समाविष्ट 5 कनाल 19 मारला भूमि क्रय किया था । हरबंस सिंह (वादी) विक्रय विलेख के निष्पादन के समय पर क्रेता की ओर से उपस्थित हुआ था । विवादित संपत्ति (प्रदर्श डी-1) का वर्ष 1984-1985 के लिए जमाबंदी से यह प्रकट होता है कि खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) में मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) के नाम स्वामियों के रूप में दर्शित है जबकि हरबंस सिंह (वादी) का नाम स्वामी के रूप में खसरा सं. 935/1/1/2(5-18) में दर्शित है । मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1)

ने यह कथन किया है कि हरबंस सिंह के नाम में दर्शित भूमि को उसके द्वारा संयुक्त कुटुम्ब की निधि से क्रय किया गया है, किन्तु उस तथ्य को लड़ने वाले प्रतिवादियों द्वारा साबित या सिद्ध नहीं किया गया है । उस अभिप्राय में, राजस्व अभिलेखों से प्रतीत होता है कि संबंधित पक्षकार, पृथक् संपत्तियों के संबंध में स्वामी थे न कि संयुक्त स्वामियों के रूप में । यह तथ्य शेष रह जाता है कि हरबंस सिंह (मूल वादी), मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) सगे भाई होने के नाते नजदीकी नातेदार थे । आगे, यद्यपि, जमाबंदी में अभिलिखित वाद संपत्ति के स्वामित्व से संबंधित प्रतिवादी, हरबंस सिंह (वादी) ने संपत्ति पर 16 दुकानों, अपनी पत्नी-गुरचरण कौर की समाधि और चाहरदीवारी का निर्माण किया था और जिन पर उसका कब्जा था । संगत तौर पर, विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 24 में यह राय दी थी सभी तीनों भाई – हरबंस सिंह (वादी), मोहन सिंह (प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) जैसा कि प्रदर्श पी-6 में उल्लिखित है, कतिपय संपत्तियों को धारित करते थे जिन पर बड़ा होने के नाते हरबंस सिंह (वादी) का कब्जा था । तथापि, यह अनुज्ञेय कब्जा था । प्रथम अपील न्यायालय ने भी निर्णय के पैरा 16 में यह राय दी है कि हरबंस सिंह (वादी) प्रतिवादियों की सहमति से वाद संपत्ति के कब्जे में आया था । विशेष रूप से, तथ्य के इस निष्कर्ष में उच्च न्यायालय द्वारा कोई छेड़-छाड़ नहीं किया गया है । इसके अलावा, अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि प्रेम बस्ती का भूखंड हरबंस सिंह (वादी) से संबंधित है जिसे उसने मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) से उसका कब्जा लेने के पश्चात् सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) को दिया था । आगे, हरबंस सिंह (वादी) ने अपने पुत्र के नाम में क्रय भूखंड को मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और अपनी पत्नी को दिया था । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा स्वीकार किया गया है कि बाद में उक्त भूखंड को सुरजीत कौर को विक्रय कर दिया गया था । इन तथ्यों से स्पष्टत: यह सिद्ध होता है कि पक्षकारों के बीच न केवल एकार्थक कुटुम्ब व्यवस्थापन हुआ था अपितु उस पर, किसी अपवाद के बिना उनके द्वारा कार्य भी किया गया था । इस तथ्यात्मक स्थिति पर, उच्च न्यायालय द्वारा संदेह नहीं किया गया है ।

12. यथार्थतः, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष की सत्यता का विश्लेषण करते समय इस पहलू का उल्लेख भी नहीं किया है जो न्यायालय का अंतिम तथ्य निष्कर्ष था । आक्षेपित निर्णय से, यह उल्लिखित है कि आधारभूत तथ्यों को देने के पश्चात्, उच्च न्यायालय ने सर्वप्रथम विचारण न्यायालय के निर्णय के सुसंगत भाग को उद्धृत (उसके पैरा 17 से 21) किया है और उसके पश्चात् अन्य विवाद्यकों पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को उल्लिखित किया है । उसके बाद उच्च न्यायालय ने इसकी संपूर्णता में, प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के पैरा 16 को उद्धृत किया, लगभग 8 पृष्ठों को पढ़ने के पश्चात् और उसके बाद विधि के सारवान् प्रश्न को विरचित किया । उक्त विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर देने के लिए उच्च न्यायालय ने प्रथमतः **भूप सिंह** बनाम **राम सिंह मेजर और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय का उल्लेख किया और उसके पैरा 12, 13, 16 और 18 को प्रस्तुत किया । इसके पश्चात्, **हंसराज और अन्य** बनाम **मुख्तियार सिंह**[2] वाले मामले में, उसी उच्च न्यायालय के विनिश्चय के सुसंगत भाग को उद्धृत किया है । ऐसा करने के पश्चात्, उच्च न्यायालय ने उसके बाद इसमें के अपीलार्थियों की दलीलों को निर्दिष्ट किया और **हरिशंकर सिंघानिया और अन्य** बनाम **गौर हरि सिंघानिया और अन्य**[3] वाले मामले में, दिए गए निर्णय के पैरा 44 और 54 को उद्धृत किया । उसके बाद, उच्च न्यायालय ने **जगदीश और अन्य** बनाम **रामकरण और अन्य**[4] वाले मामले में, उसी उच्च न्यायालय के विनिश्चय को उल्लिखित किया और उसके पैरा 14 को प्रस्तुत किया । व्यापक रूप से पूर्वोक्त उद्धरणों को प्रस्तुत करने के पश्चात्, उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित शब्दों में वर्तमान मामले के तथ्यात्मक पहलुओं को उल्लिखित करते हुए, अपील मंजूर कर लिया था :–

---

[1] (1995) 5 एस. सी. सी. 709.

[2] (1996) 3 आर. सी. आर. (सि.) 740. (पैरा 7 से 9).

[3] (2006) 4 एस. सी. सी. 658.

[4] पी. एल. आर. (2003) 135 पंजाब और हरियाणा 182.

"मामले का विचार करने पर, मेरा यह निष्कर्ष है कि दस्तावेज, जो प्रथम बार एक स्थावर संपत्ति में वादी के पक्ष में अधिकार सृजित करता है, जिसमें उसका कोई पूर्व-विद्यमान अधिकार नहीं है, तब उसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित है । पूर्व-विद्यमान अधिकार की उपधारणा मात्र तभी की जा सकती है यदि सहमति डिक्री पारित की जाती है जहां ऐसे दावे को अन्य पक्षकार द्वारा स्वीकृत किया जाता है, किन्तु एक दस्तावेज जिसे पक्षकार द्वारा विवादित नहीं किया जाता है और अधिकार स्वीकार किए जाने के बारे में कोई स्वीकृति नहीं है और वाद एक ऐसे दस्तावेज पर आधारित है जिसके अधीन अधिकार उस संपत्ति में वादी को अंतरित हुआ है जिसमें उसका कोई पूर्व-विद्यमान अधिकार नहीं है तो इसे रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित नहीं होगा क्योंकि ऐसा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सोम देव और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय निर्णयासार के अनुसार होगा । विधि की इस प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए यदि मामले पर विचार किया जाता है तो विधि का प्रश्न, जैसा विरचित है, का उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में जाता है ।

वर्तमान मामले में, यह उल्लिखित किया जा सकता है कि विवादित संपत्ति दो विक्रय विलेखों के माध्यम से क्रय की गई थी और पक्षकारों का स्वामित्व राजस्व अभिलेखों से सम्यक् रूप से प्रलक्षित होता है । वादी ने कुटुम्ब बंदोबस्त के विलेख प्रदर्श पी-6 के अधीन संपत्ति में अधिकार का दावा किया है । इस प्रकार, उसने यह दावा किया है कि प्रतिवादियों ने कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन के अधीन उसके पक्ष में स्थावर संपत्ति में अपने अधिकार का त्यजन कर दिया है जिसे ठीक पहले निष्पादित किया जाना अभिकथित है । किसी भी दशा में यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दस्तावेज रु. 100/- से अधिक मूल्य की स्थावर संपत्ति में हक अंतरित करता है तो भी यदि इसे त्यजन के माध्यम से किया जाता है तो भी इसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित है । इस प्रकार, विद्यमान विचारण न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने

में सही था कि वादी को प्रदर्श पी-6 अर्थात् पक्षकारों के बीच किए गए कुटुम्ब बंदोबस्त के अधीन कोई हक अंतरित नहीं हुआ था । इस मत का समर्थन, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हरि चंद (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण **बनाम** धरमपाल सिंह बाबा [(2007) 4 हेराल्ड (एस. सी.) 3028] वाले मामले में दिए गए निर्णय से होता है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अधिकथित किया गया है कि कुटुम्ब बंदोबस्त के अधीन मात्र संपत्ति में विधिपूर्ण अधिकार अंतरित किया जा सकता है और उसके बाद एकमात्र कुटुम्ब बंदोबस्त निष्पादित किया जा सकता है । जब संपत्ति में पक्षकारों का कोई विधिपूर्ण अधिकार नहीं होता है तो कुटुम्ब व्यवस्थापन के आधार पर वाद फाइल करने का कोई अवसर नहीं मिलता है ।

उपर्युक्त कथित मत और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पुन: स्थापित किया जाता है किन्तु खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

13. इसके विरुद्ध, प्रथम अपील न्यायालय ने संबंधित पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्यों, मौखिक के साथ ही दस्तावेजी का सभी प्रकार से परीक्षा की है । प्रथमत:, इस प्रश्न की परीक्षा की कि क्या दस्तावेज प्रदर्श पी-6, पक्षकारों द्वारा निष्पादित किया गया है या नहीं । सुसंगत साक्ष्यों का उल्लेख करने के पश्चात्, प्रथम न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि विचारण न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने में सही था कि प्रदर्श पी-6, इसमें निर्दिष्ट पक्षकारों द्वारा निष्पादित हुआ है । तथ्य का समवर्ती निष्कर्ष होने के नाते इसमें और संवीक्षा की आवश्यकता नहीं है । उच्च न्यायालय ने तथ्य के इस निष्कर्ष को उलटा नहीं है जैसा कि उसने उपर्युक्त प्रस्तुत अपने निर्णय के उद्धरणों में उल्लिखित किया है । उसके बाद, प्रथम अपील न्यायालय ने इस प्रश्न की परीक्षा की है कि क्या दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था । उच्च न्यायालय ने अपनी संपूर्णता में प्रथम अपील

न्यायालय के निर्णय के पैरा 16 को प्रस्तुत किया है । यह उल्लिखित करना सुसंगत है कि प्रथम अपील न्यायालय ने क्रमश: पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और मौखिक तथा दस्तावेज साक्ष्यों का उल्लेख किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी ने वादी और प्रतिवादी सं. 2 और 3 अर्थात् सोहन सिंह और हरजिन्दर कौर के बीच तारीख 15 मई, 1992 के समझौते प्रदर्श (सी एक्स) को साबित कर दिया है । हरजिन्दर कौर साक्षी कटघरे में उपस्थित हुई थी और उक्त तथ्य को स्वीकार किया था । उसने कुटुम्ब बंदोबस्त के निष्पादन के तथ्य को भी स्वीकार किया था । इस प्रकार, हरबंस सिंह (वादी) के उत्तराधिकारियों और मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) के बीच विवाद था । इस प्रकार, प्रथम अपील न्यायालय ने वादी के इस आधार को स्वीकार कर लिया था कि वर्ष 1970 में, भूमि क्रय करने के पश्चात् वाद भूमि के बारे में पक्षकारों के बीच विवाद उद्भूत हुआ था और उस कुटुम्ब बंदोबस्त में वादी को वाद संपत्ति जिसमें उस पर निर्माण सम्मिलित थे, का स्वामी अभिनिर्धारित किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय ने उक्त संदर्भ में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :-

> "16. ..... वादी का विनिर्दिष्ट पक्षकथन यह है कि उसने वाद भूमि पर 16 दुकानों, एक सर्विस स्टेशन के साथ चाहरदीवारी और श्रीमती गुरचरण कौर की समाधि का भी निर्माण अपने व्यक्तिगत धन से किया है । यह स्वीकृत है कि गुरचरण कौर की समाधि वाद संपत्ति में है । यदि वादी को वाद संपत्ति के स्वामी की जानकारी नहीं थी तो वाद संपत्ति पर वादी द्वारा अपनी पत्नी गुरचरण कौर की समाधि का निर्माण करने का प्रश्न ही नहीं उठता था । इसलिए, प्रतिवादी का यह बयान कि वर्ष 1970 में कोई विवाद उद्भूत नहीं हुआ था और कोई कुटुम्ब बंदोबस्त नहीं हुआ था, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है .....।"

उसके बाद, प्रथम अपील न्यायालय ने प्रतिवादी साक्षियों के साक्ष्य का विश्लेषण किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वे विश्वसनीय या ठीक नहीं हैं क्योंकि वे वाद संपत्ति के बारे में कोई तथ्य नहीं जानते हैं । उसके बाद, प्रथम अपील न्यायालय ने एक अन्य दुरूह तथ्य का उल्लेख

किया और यह उल्लिखित किया कि मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) वर्ष 1988 के पूर्व प्रेम बस्ती में स्थित गृह में रहते थे जो हरबंस सिंह (वादी) से संबंधित था । जैसा कि पूर्ववर्ती उल्लिखित किया जा चुका है, कुटुम्ब व्यवस्थापन के अनुसार, इस संपत्ति को सोहन सिंह को दे दिया गया था और जैसा कि कुटुम्ब व्यवस्थापन के ज्ञापन (प्रदर्श पी-6) में अभिलिखित किया गया है । प्रथम अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वे वाद संपत्ति के कब्जे में थे या उसके कब्जे में बने रहे हैं । दूसरी ओर, अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह स्पष्टत: सिद्ध होता है कि वादी, वाद संपत्ति के कब्जे में था । उसके बाद, प्रथम अपील न्यायालय ने दस्तावेज प्रदर्श पी-6 का निर्वचन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि यह खसरा सं. 935 (11-17) के संबंध में नहीं था, अपितु यह अन्य संपत्तियों से निर्दिष्ट था । सुसंगत साक्ष्यों का विश्लेषण करने के पश्चात्, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श पी-6, कुटुम्ब व्यवस्थापन के निबंधनों और वर्णनों से अंतर्विष्ट दस्तावेज के रूप में निर्मित नहीं किया जा सकता है अपितु, यह एकमात्र कुटुम्ब व्यवस्थापन का ज्ञापन है । माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :-

> "16. दस्तावेज प्रदर्श पी-6, खसरा सं. 935(11-17) के बारे में नहीं है, अपितु उक्त दस्तावेज में अन्य संपत्तियां भी सम्मिलित हैं । प्रेम बस्ती में स्थित एक भूखंड जो हरबंस सिंह और गुरचरण कौर के नाम में थी, को मोहन सिंह से पहले ही खाली कराया गया था और सोहन सिंह और हरजिन्दर सिंह को दे दिया गया था । 17 मारला माप की एक भूखंड जिसे विक्रमजीत सिंह द्वारा क्रय किया गया था, मंजित कौर और मोहन सिंह को दे दिया गया था और मंजित कौर, प्रतिवादी साक्षी - 1 ने यह स्वीकार किया है कि उसने उक्त भूखंड को पहले ही सुरजीत कौर को विक्रय कर दिया था । इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त दस्तावेज के आधार पर कार्य किया गया था । यद्यपि, उक्त दस्तावेज के कुछ वाक्य वर्तमान काल में है किन्तु न्यायालय को अभिलेख पर के

सामग्रियों से यह देखना होता है कि क्या उक्त दस्तावेज, स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार सृजित करता है या कोई अधिकार पहले ही सृजित कर चुका है, किन्तु दस्तावेज, ज्ञापन के रूप में लिखित था । उक्त दस्तावेज खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) से संबंधित नहीं है, अपितु संपूर्ण खसरा सं. 935/1(11-17) से संबंधित है । यदि उक्त दस्तावेज, खसरा सं. 935/1/1/1(5-19) में कोई अधिकार सृजित करता है तो उसे पक्षकारों के सामान्य प्रवर्ग और अन्य संपत्ति के बारे में खसरा सं. 935/1/1/2 को डालने का प्रश्न ही नहीं उठता है । यह विनिर्दिष्ट वर्णन है कि विक्रय विलेखों के आधार पर, हरबंस सिंह वाद संपत्ति का कब्जे सहित स्वामी था और उसके कब्जे में आया था । हरबंस सिंह ने वहां 16 दुकानों और एक सर्विस स्टेशन का निर्माण कराया था । दूसरे शब्दों में, यह साबित होता है कि हरबंस सिंह, वाद संपत्ति का कब्जे सहित स्वामी था । उस दिन, उक्त दस्तावेज का निष्पादन होने के पूर्व उन्होंने उसके स्वामित्व के बारे में कोई विवाद उद्भूत करने के लिए कोई समझौता नहीं किया था । इसलिए, यह दस्तावेज इस तथ्य के बारे में एक लिखत है जिस पर पहले ही विचार किया जा चुका है और पक्षकारों द्वारा स्वीकृत है । इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह दस्तावेज जिसकी प्रतिलिपि प्रदर्श पी-6 है, स्थावरसंपत्ति में प्रथम बार कोई अधिकार सृजित करता है ....।"

और पुन: निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :-

"16. ..... चूंकि पक्षकार एक दूसरे के नजदीकी नातेदार थे और दस्तावेज उस तथ्य के बारे में निष्पादित हुआ था जिसे वे पहले ही स्वीकार कर चुके थे, इसलिए, मेरा यह मत है कि तारीख 10 मार्च, 1988 का दस्तावेज जिसकी प्रतिलिपि प्रदर्श पी-6 है, का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है । **हंस राज** (उपर्युक्त) वाले मामले में, मामले में समझौता हुआ था और दस्तावेज स्वयमेव संपत्ति में अधिकार सृजित करता था । हरि सिंह **बनाम** शीष राम और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि

पक्षकारों के बीच दस्तावेज विभाजित हुआ था और प्रतिफल, एक पक्षकार से अन्य पक्षकार को अंतरित हुआ था । शीशपाल **बनाम** विक्रम (उपर्युक्त) वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि ज्ञानी राम के जीवनकाल के दौरान वादी ने वाद फाइल किया था, इसलिए, कोई अन्य कुटुम्ब बंदोबस्त नहीं हो सकता था । करमजीत कौर और एक अन्य **बनाम** श्रीमती सुखजीन्दर कौर और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में, वादी और प्रतिवादी सं. 1 से 4 के बीच समझौता हुआ था जिसके अधीन मोहिन्दर सिंह द्वारा छोड़े गए 90 बीघा भूमि में से 30 बीघा भूमि लेने पर सहमति हुई थी, इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त समझौता, रुपए 100/- से अधिक मूल्य की संपत्ति में प्रतिवादी सं. 5 और 6 के पक्ष में अधिकार सृजित करता है, इसलिए, इसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था । प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत उपर्युक्त उक्त प्रमाणिकताएं तथ्यों के आधार पर विभेदनीय है और उक्त प्रमाणिकताओं के विनिश्चयाधार को वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं किया जा सकता है । चूंकि, वादी ने वाद संपत्ति के कब्जे में विद्वान् होना साबित कर दिया है । इसलिए, उक्त संपत्ति पर दुकानों, सर्विस स्टेशन का निर्माण स्वयं वादी द्वारा कराया गया था और न कि संयुक्त कुटुम्ब की निधि से कराया गया था । इस तथ्य की संपुष्टि तारीख 10 मार्च, 1988 को लिखित प्रदर्श पी-6 की प्रतिलिपि से भी पुष्टि होती है । चूंकि उक्त दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण कराना अपेक्षित नहीं था, इसलिए, वादी ने वाद संपत्ति का स्वामी होना साबित कर दिया है । प्रतिवादी, कुटुम्ब बंदोबस्त के निष्पादन से इनकार करने से विबंधित हैं । प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि हरबंस सिंह, मोहन सिंह और सोहन सिंह संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब संपत्ति गठित करते थे और वाद संपत्ति पर निर्माण संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब निधियों से हुआ था । इस प्रकार, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 3, 5 और 7 पर अभिलिखित निष्कर्ष अपास्त किए जाते हैं और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी ने

वाद संपत्ति पर दुकानों और सर्विस स्टेशन और चाहरदीवारी का निर्माण स्वयं अपनी निधियों से किया है । प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि विवादित संपत्ति, संयुक्त हिन्दू सहदायिक संपत्ति की आय से क्रय की गई थी और सोहन सिंह, मोहन सिंह और हरबंस सिंह संयुक्त कुटुम्ब गठित करते थे । इसलिए, इन विवाद्यकों को वादी के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है । पक्षकारों ने कुटुम्ब बंदोबस्त के ज्ञापन द्वारा तारीख 10 मार्च, 1988 के दस्तावेज प्रदर्श पी-6 को निष्पादित किया था और इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित नहीं था । प्रतिवादी उक्त दस्तावेज के निष्पादन से इनकार करने से विबंधित है और वादी का वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी होना साबित होता है । विवाद्यक सं. 1, 2 और 7 भी वादी के पक्ष में विनिश्चित किए जाते हैं । चूंकि, वादी प्रतिवादियों की सहमति से वाद संपत्ति के कब्जे में आया था और उसका कब्जा कभी भी प्रतिवादियों के हित के प्रतिकूल नहीं हुआ था, इसलिए, विवाद्यक सं. 4 पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।"

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया)

14. जैसा कि उपर्युक्त पैरा 12 में उच्च न्यायालय के निर्णय के उद्धृत भाग से उल्लिखित किया गया है, से साधारणत: स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा उल्लिखित तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार नहीं किया है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 मात्र कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है और न कि कुटुम्ब बंदोबस्त के निबंधनों और वर्णनों को अंतर्विष्ट करने वाले दस्तावेज हैं जिसके कारण, वादी द्वारा दावाकृत अनुतोष वर्ष 1970 में किए गए सगे भाइयों के बीच कुटुम्ब व्यवस्थापन पर आधारित है, जिस पर बिना किसी अपवाद के कार्य किया गया है और जिसे तारीख 10 मार्च, 1988 को दस्तावेज का रूप दिया गया, का अनुसरण किया जाना चाहिए ।

15. प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायोचित तौर पर यह भी राय दी

है कि पक्षकारों ने कथित कुटुम्ब बंदोबस्त के आधार पर कार्य किया है और यदि हम ऐसा कह सकते हैं तो वह अन्य पक्षकार के प्रतिकूल होगा । प्रेम बस्ती में स्थित संपत्ति वादी के नाम में थी जिसे सोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 2) को दिया गया था जो अन्यथा मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) के कब्जे में थी । आगे, वादी द्वारा अपने पुत्र के नाम में क्रय की गई भूखंड को मोहन सिंह (मूल प्रतिवादी सं. 1) और उसकी पत्नी को दिया गया था किन्तु वह भूखंड, स्वीकृततः, उनके द्वारा सुरजीत कौर को विक्रय कर दिया गया था । सगे भाइयों के बीच कुटुम्ब बंदोबस्त और उनके द्वारा उस पर कार्य किए जाने के कारण, यह उनके द्वारा इसका विरोध करने के लिए खुला नहीं है । वे इसके प्रतिकूल दलील देने से विबंधित हैं । इस दुरुह पहलू पर उच्च न्यायालय द्वारा सही व्याख्या नहीं की गई है और यदि हम ऐसा कह सकते हैं तो द्वितीय अपील साधारण तरीके से निपटाई गई हैं । चूंकि, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में, मात्र विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के उद्धरण अंतर्विष्ट हैं और उन निर्णयों (पूर्व-निर्णयों) का अवलंब लिया गया है । मात्र दो निष्कर्ष वाले पैराओं पर विचार किया गया है जो उपर्युक्त उद्धृत हैं (पैरा 12) । यद्यपि, उसका उदार परिशीलन करने पर, यह निष्कर्ष निकालना संभाव्य नहीं है कि उच्च न्यायालय ने अपनी अपीली अधिकारिता (द्वितीय अपील) का प्रयोग करते हुए, सही परिप्रेक्ष्य में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय का समुचित विश्लेषण और संवीक्षा की है, कम से कम, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ग्रहण करने की सीमित अधिकारिता को ध्यान में रखते हुए । आक्षेपित निर्णय में, उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के सुविचारित विनिश्चय को उलटने में लापरवाह दृष्टिकोण अपनाया गया है । यद्यपि, आक्षेपित निर्णय में 36 पृष्ठ हैं, फिर भी जिस तरीके से इसमें कार्यवाही की गई है उससे हमारे लिए यह राय व्यक्त करना समुचित होगा कि यह रहस्मय निर्णय है । हम इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते हैं । एकमात्र इस आधार पर ही आक्षेपित निर्णय, न्यायिक संवीक्षा की परीक्षण में खरे नहीं उतरता है ।

16. चाहे जैसी भी स्थिति हो, उच्च न्यायालय ने अवलंब लिए गए विनिश्चयों में सुस्थिर सिद्धांत को स्पष्टत: गलत तौर पर लागू किया है । सुस्थिर विधिक प्रास्थिति यह है कि जब कुटुम्ब बंदोबस्त या व्यवस्थापन को ध्यान में रखते हुए, एक ही पूर्वज या नजदीकी नातेदार से कुटुम्ब वंशज के सदस्य अपने विभेदों और विवाद्यकों का निपटारा करने के लिए विरोधाभासी दावों और हक संबंधी विवादों और विवेक में शांति को ध्यान में रखते हुए और लगभग संपूर्ण सौहार्द और कुटुम्ब की भलाई के लिए कोई बंदोबस्त और व्यवस्थापन करते हैं तो ऐसे करार को उनके बीच विशेष साम्या द्वारा शासित होना चाहिए और उन्हें ईमानदारी से प्रवर्तित करना चाहिए । ऐसे व्यवस्थापन का उद्देश्य लंबे मुकदमेबाजी या शाश्वत संघर्ष से कुटुम्ब की संरक्षा करना है जिससे कुटुम्ब की एकता और मजबूती के बिगड़ने का भय समाप्त हो जाता है और कुटुम्ब के कतिपय सदस्यों के बीच घृणा और नफरत को समाप्त करता है जैसा कि **काले** (उपर्युक्त) वाले मामले में व्यक्त किया गया है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ द्वारा उक्त रिपोर्टिंग विनिश्चय में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "9. ..... एक कुटुम्ब व्यवस्थापन जिसके द्वारा संपत्ति को कतिपय दावेदारों के बीच साम्या रूप से विभाजित किया जाता है ताकि संपत्ति कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होने के बजाय समान रूप से विभाजित हो सके जो निस्संदेह, सामाजिक न्याय के प्रशासन में एक मील का पत्थर साबित होता है । शब्द 'कुटुम्ब' का निर्वचन व्यापक अर्थ में किया जाना चाहिए जिससे कि इसके भीतर न केवल नजदीकी नातेदार या विधिक उत्तराधिकारी सम्मिलित हो सके अपितु वे व्यक्ति भी सम्मिलित हो सके जिनका थोड़ा भी पूर्ववर्ती हक हो सकता है, जो दावे का दिखावा करते हैं या यद्यपि, वे संभाव्य उत्तराधिकारी हो सकते हैं जिससे कि भविष्य में विवाद पैदा हो सकते हैं, को हमेशा के लिए बंद कर दिया जाता है और कुटुम्ब के सदस्य आपसी दावे के अधीन लड़ने और समय बर्बाद करने, धन और उर्जा बर्बाद करने के बजाय ऐसे बेकार और तुच्छ

मुकदमेबाजी से अपना ध्यान हटाते हुए देश के व्यापक हित में अत्यधिक रचनात्मक कार्य कर सकते हैं । इसलिए, न्यायालयों को कुटुम्ब व्यवस्थापन पर निर्णय करते समय तकनीकी और तुच्छ आधारों पर उसे बाधित करने के बजाय उसके पक्ष में अभिनिर्धारण करना चाहिए । जहां न्यायालयों का यह निष्कर्ष होता है कि कुटुम्ब व्यवस्थापन, विधिक त्रुटि या औपचारिक कमी से ग्रसित है वहां विबंधन के नियम को लागू करना चाहिए और उस व्यक्ति के अभिवाक् को लागू करना चाहिए जो कुटुम्ब व्यवस्थापन का पक्षकार होने के नाते विवाद्यकों को सुस्थिर करने की ईप्सा करता है और कुटुम्ब व्यवस्थापन को अभिखंडित करने का दावा करता है जिसके अधीन उसने स्वयं ही कुछ तात्विक फायदों को उठाया है .... ।"

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

उक्त विनिश्चय के पैरा 10 में, न्यायालय ने कुटुम्ब व्यवस्थापन के आवश्यक अवयवों को निम्नलिखित रूप से अवधारित किया है :-

"10. दूसरे शब्दों में, कुटुम्ब व्यवस्थापन को बाध्यकारी प्रभाव देना चाहिए और इसके आवश्यक अवयवों को कंक्रीट के प्ररूप में अवधारित करना चाहिए जिससे कि मामले को निम्नलिखित प्रतिपादनाओं के प्ररूप में लेखबद्ध किया जा सके -

'1. कुटुम्ब व्यवस्थापन सद्भाविक रूप में होना चाहिए जिससे कि कुटुम्ब के कतिपय सदस्यों के बीच कुटुम्ब विवाद्यकों और उनके विरोधी दावों को ऋजु तरीके से समाधान किया जा सके और संपत्तियों के साम्यिक विभाजन और आबंटन किया जा सके ।

2. उक्त व्यवस्थापन स्वैच्छिक होना चाहिए और इसे कपट, प्रपीड़न और असम्यक् प्रभाव से ग्रसित नहीं होना चाहिए ।

3. कुटुम्ब व्यवस्थापन मौखिक में भी हो सकता है जिसका रजिस्ट्रीकरण आवश्यक नहीं होता है ।

4. यह सुस्थिर है कि रजिस्ट्रीकरण मात्र तभी आवश्यक होता है जब कुटुम्ब व्यवस्थापन के निबंधन लेखबद्ध होते हैं । यहां भी दस्तावेज में उल्लिखित कुटुम्ब व्यवस्थापन के निबंधनों और वर्णनों को अंतर्विष्ट करने वाले दस्तावेज के बीच विभेद किया जाना चाहिए और कुटुम्ब व्यवस्थापन के पश्चात् तैयार मात्र ज्ञापन को आवश्यक नामंतरण कराने के लिए या तो अभिलेख के प्रयोजन के लिए पहले ही न्यायालय के समक्ष या उसकी सूचना के लिए अभिलेख पर रखा जाता है । ऐसे मामलों में, ज्ञापन स्वयमेव ही स्थावर संपत्तियों में किन्हीं अधिकारों का सृजन या समाप्त नहीं करता है और इसलिए, यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(2) की रिष्टि पर नहीं आता है और इसलिए, इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अनिवार्य नहीं है ।

5. सदस्य जो कुटुम्ब व्यवस्थापन में पक्षकार हो सकते हैं, के पास संपत्ति में कुछ पूर्ववर्ती हक, दावा या हित, यहां तक कि संपत्ति में संभाव्य दावा भी हो सकता है, होना चाहिए जिसकी अभिस्वीकृति व्यवस्थापन के पक्षकारों को होती है । यद्यपि, व्यवस्थापन के पक्षकारों में से एक के पास कोई हक नहीं होता है किन्तु व्यवस्थापन के अधीन अन्य पक्षकार एक ऐसे व्यक्ति के पक्ष में अपने सभी दावों या हकों का त्यजन कर देते हैं और उसकी अभिस्वीकृति एकमात्र स्वामी को होती है तो पूर्ववर्ती हक की उपधारणा की जानी चाहिए और कुटुम्ब व्यवस्थापन को कायम रखना होगा और न्यायालयों को ऐसे व्यवस्थापन पर सहमति देने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

6. यद्यपि, सद्भाविक विवाद्यक, वर्तमान या संभाव्य हो सकते हैं जिनमें विधिक दावे अंतर्वलित नहीं हो सकते हैं, को कुटुम्ब व्यवस्थापन की सद्भावना में निपटाया जाना चाहिए जो कुटुम्ब व्यवस्थापन के लिए ऋजु और साम्यिक हैं, व्यवस्थापन के पक्षकारों पर अंतिम और बाध्यकारी होते हैं ।'"

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

पुन:, पैरा 24 में, इस न्यायालय ने यह दोहराया है कि कुटुम्ब व्यवस्थापन पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के नाते स्पष्टत:, एक विबंधन के रूप में प्रवर्तित होता है ताकि पक्षकारों में से किसी भी ऐसे पक्षकार को अपवर्जित किया जा सके जो उसको अभिखंडित करने या चुनौती देते हुए, करार के अधीन कोई फायदा उठाया है । पैरा 35 में, न्यायालय ने निम्नलिखित उल्लिखित किया है :-

> "35. ..... हम पहले ही यह इंगित कर चुके हैं कि इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती हक की अवधारणा को व्यापक रूप में माना है, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि ऐसे पूर्ववर्ती हक की उपधारणा उस व्यक्ति के पक्ष में की जाएगी जिसके पास कोई हक नहीं हो सकता है किन्तु जिसे, ऐसे आदाता के पक्ष में अपने दावे का त्यजन करते हुए, कुटुम्ब व्यवस्थापन के अन्य पक्षकार द्वारा विशिष्ट संपत्ति आबंटित की गई है । ऐसे मामलों में, पक्षकार जिसके पक्ष में संपत्ति का त्यजन किया गया है, के पक्ष में पूर्ववर्ती हक की उपधारणा की जाएगी ..... ।"

पुन: पैरा 36, में निम्नलिखित उल्लिखित किया गया है :-

> "36. ..... फिर भी नजदीकी नातेदारी को ध्यान में रखते हुए, जो भाई और विधवा के दामाद की है, प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कुटुम्ब व्यवस्थापन जिसके द्वारा संपत्तियां इन तीन पक्षकारों के बीच विभाजित की गई थीं, विधिमान्य थीं । वर्तमान मामले में भी प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 के उच्चतर हित को ध्यान में रखते हुए, स्थिति यह है कि लक्ष्मण ने अपनी मृत्यु होने के पूर्व अपना एक पौत्र और दो पुत्रियों को छोड़ गया था । यह उपधारणा करते हुए कि प्रपौत्र के पास कोई विधिक हक नहीं था, क्योंकि पुत्रियां जीवित थीं इसीलिए, कुटुम्ब के सभी नजदीकी नातेदारों के विवाद्यकों का अंत करने और उनके फायदे के लिए कुटुम्ब व्यवस्थापन किया गया था ताकि कुटुम्ब व्यवस्थापन को विधिमान्य और बाध्यकारी रूप से कायम रखा जा सके ..... ।"

विबंधन का सिद्धांत लागू नहीं होने के बारे में, तर्कों को नामंजूर करते समय, न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :-

> "38. ..... तथापि, यह उपधारणा करते हुए कि उक्त दस्तावेज अनिवार्य रूप से रजिस्ट्री किए जाने योग्य था, न्यायालयों ने साधारणतया यह अभिनिर्धारित किया है कि कुटुम्ब व्यवस्थापन पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के नाते उन पक्षकारों के विरुद्ध जिन्होंने व्यवस्थापन के अधीन लाभ लेने के पश्चात् उसका विरोध करने या उसे अभिखंडित करने की कोशिश की है, विबंधन के रूप में प्रवर्तित होगा .... ।"
>
> (रेखांकन जोर देने के लिए किया गया)

और पैरा 42 में, न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :-

> "42. ..... इन परिस्थितियों में, इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यद्यपि, कुटुम्ब व्यवस्थापन रजिस्ट्रीकृत नहीं था तो भी यह प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 के विरुद्ध पूर्ण विबंधन के रूप में प्रवर्तित होगा । इसलिए, प्रत्यर्थी सं. 1 उच्च न्यायालय के रूप में भी इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में निर्णयज विधि के रूप में विबंधन के सिद्धांत को स्थापित करने के बावजूद प्रभावी नहीं करने के कारण विधि की सारवान् त्रुटि कारित की है .... ।"
>
> (रेखांकन जोर देने के लिए किया गया)

इस प्रकार, उपर्युक्त निर्दिष्ट पूर्ववर्ती विनिश्चयों के संगत भाग का उल्लेख किया गया है और रिपोर्टिंग निर्णय का सम्यक् रूप से विश्लेषण किया गया है । हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित प्रश्न का उत्तर, इस न्यायालय द्वारा **काले** (उपर्युक्त) के विनिश्चयों के संगत भाग के प्रकाश में अपीलार्थियों (वादियों) के पक्ष में जाता है । पूर्ववर्ती, हमें प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष की पुष्टि करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 कुछ नहीं है अपितु, एक कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है । सिद्ध तथ्यों और परिस्थितियों से स्पष्टत: यह सिद्ध होता है कि कुटुम्ब बंदोबस्त वर्ष 1970 में किया गया था और संबंधित पक्षकारों द्वारा उस पर कार्य भी

किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य का निष्कर्ष, संतोषजनक होने के नाते, इस बात के लिए अनुसरण किया जाना चाहिए कि दस्तावेज प्रदर्श पी-6 मात्र एक कुटुम्ब बंदोबस्त का ज्ञापन है, जैसा कि निष्कर्ष निकाला गया है । परिणामतः, इसे रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं था और किसी भी दशा में, सुस्थिर विधिक प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए, लड़ने वाले प्रतिवादी, ज्ञापन के अध्यधीन कथित व्यवस्थापन से इनकार करने से विबंधित हैं जिसे पहले ही निकाले गए निष्कर्ष में बंदोबस्त के निबंधनों में अभिलिखित किया गया था और संबंधित संपत्ति में पूर्ववर्ती हक के अभाव के बावजूद कुटुम्ब सदस्यों (ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले) के बीच विषयवस्तु की संपत्ति के बारे में सभी मौजूदा या भावी विवादों के संबंध में भी उसके आधार पर कार्य किया गया है ।

17. जहां तक **भूप सिंह** (उपर्युक्त) और **सोम देव और अन्य** बनाम **रति राम और एक अन्य**[1] वाले मामले में, विनिश्चय का संबंध है, उनमें रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(2) के खंड (vi) द्वारा शासित न्यायालय के किसी डिक्री या आदेश के रजिस्ट्रीकरण किए जाने की आवश्यकता के प्रश्न पर विचार किया गया था । तथापि, वर्तमान मामले में, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 की उपधारा (2) का खंड (v) लागू होता है । धारा 17, तब लागू होता है जब वाद हेतुक 2001 के संशोधन के पूर्व उद्भूत होता है, जो इस प्रकार है :-

"धारा 17 – **दस्तावेजें जिनका रजिस्ट्रीकरण अनिवार्य है** –

(1) * * * *

(2) उपधारा (1) के खंड ख और ग में कोई भी बात निम्नलिखित को लागू नहीं होती –

(i) * * * *

(ii) * * * *

(iii) * * * *

---

[1] (2006) 10 एस. सी. सी. 788.

(iv) * * * *

(v) धारा (1क) में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों से भिन्न किसी ऐसी दस्तावेज को जो स्वयं तो स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित सृष्ट, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित नहीं करती, किन्तु केवल ऐसी दूसरी दस्तावेज को अभिप्राप्त करने का अधिकार सृष्ट करती है जो निष्पादित की जाने पर ऐसा अधिकार, हक या हित सृष्ट, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित करेगी, अथवा .....।"

18. हमारे सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिए गए इस न्यायालय का विनिश्चय, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई परिवर्तन या प्रभाव नहीं डालेगा । जैसा कि पूर्वोक्त उल्लिखित किया जा चुका है, **भूप सिंह** (उपर्युक्त) और **सोम देव** (उपर्युक्त) वाले मामले में, न्यायालय ने न्यायालय की डिक्री या आदेश के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण के मुद्दे पर विचार किया था । धारा 17 की उपधारा (2) का खंड (vi) लागू होने के संदर्भ में, न्यायालय ने **भूप सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"18. पूर्वोक्त चर्चा के आधार पर खंड (vi) के बारे में विधिक प्रास्थिति संक्षिप्तत: निम्नलिखित हैं -

(1) समझौता डिक्री, यदि सद्भाविक है तो इस अभिप्राय में कि समझौता, स्टॉम्प शुल्क के संदाय का निवारण नहीं है और रजिस्ट्रीकरण से संबंधित विधि को असफल करता है तो उसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं होगा । इसके विपरीत परिस्थिति में, इसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित होगा ।

(2) यदि समझौता डिक्री, वाद के किसी पक्षकार के पक्ष में सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य की स्थावर संपत्ति में प्रथम बार कोई अधिकार, हक या हित सृजित करता है तो ऐसे डिक्री या आदेश का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित होगा ।

(3) यदि किसी डिक्री में, धारा 17 की उपधारा (1) का

कोई खंड लागू नहीं होता है जैसा कि पूर्वोक्त प्रिवी कौंसिल और इस न्यायालय के मामलों में था तो यह प्रकट होता है कि डिक्री का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं होगा ।

(4) यदि डिक्री में, समझौते के निबंधन समाविष्ट नहीं हैं जैसा कि लाहौर वाले मामले में स्थिति थी, तो समझौते के निबंधनों का फायदा नहीं मिल सकता है, यद्यपि, वाद का निपटारा प्रश्नगत समझौते का कारण हुआ था ।

(5) यदि डिक्री में विचारित संपत्ति, 'वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु' नहीं रही है तो 1929 के अधिनियम 21 द्वारा इस खंड का संशोधन होने के कारण, उपधारा (2) का खंड 5 लागू नहीं होगा जिससे प्रिवी काउंसिल के पूर्वोक्त विनिश्चय की मूल उत्पत्ति हुई थी, जिसके अनुसार, मूल खंड लागू किया गया था, यद्यपि, सम्मिलित संपत्ति मुकदमेबाजी के अधीन नहीं थी ।"

वर्तमान मामले में, जैसा कि पूर्ववर्ती में धारा 17(2) का खंड (v) लागू किया गया है, जो किसी ऐसे दस्तावेज के निष्पादन से संबंधित है जो कुटुम्ब सदस्यों के बीच स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित सृजित या समाप्त करता है । इस प्रकार, **काले** (उपर्युक्त) वाले मामले का सिद्धांत, इस मामले की तथ्यात्मक परिस्थितियों में लागू होता है ।

19. उपर्युक्त चर्चा करने के पश्चात्, हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय के सुविचारित विनिश्चय को उलटने में प्रकटत: और विशिष्टत: त्रुटि कारित की है, जिसमें न्यायोचित तौर पर यह निष्कर्ष निकाला गया था कि पक्षकारों के बीच निष्पादित तारीख 10 मार्च, 1988 का दस्तावेज मात्र बंदोबस्त का ज्ञापन था और इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित नहीं था । इस बात का भी अनुसरण किया जाना चाहिए कि वाद में वादी द्वारा दावाकृत अनुतोष जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया था, में भी उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था और इतना ही नहीं, इसे पूर्ववर्ती उल्लिखित तौर

पर सरसरी तरीके से नहीं निपटाया जाना चाहिए था ।

20. उपर्युक्त कथनों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामी होने के आधार पर यथाप्रार्थित वादी को मंजूर डिक्री के वैकल्पिक अभिवाक् की परीक्षा करना अनावश्यक हो जाता है । अभिलेख के लिए, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि वस्तुत:, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि वादी का कब्जा, मात्र अनुज्ञेय कब्जा था और उस निष्कर्ष में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा कोई बाधा नहीं डाली गई है । ऐसे मामलों में यह संदेहपूर्ण हो जाता है कि वादी को उसके द्वारा प्रार्थित अनुतोष के बारे में सुना गया है, जैसा कि उसके द्वारा प्रतिकूल कब्जे का वैकल्पिक अभिवाक् किया गया है ।

21. चाहे जैसी भी स्थिति हो, हम आक्षेपित निर्णय को अपास्त करना और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा वादियों (इसमें के अपीलार्थियों) के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री को पुन: स्थापित करना समुचित समझते हैं ।

22. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किया जाता है । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को वादी (इसमें के अपीलार्थी) के पक्ष में पुन: स्थापित किया जाता है । तद्नुसार, डिक्री तैयार किया जाए । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । लंबित अंतर्वर्ती आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी निपटाया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.